अध्याय दूसरा

कबीर कालीन भारत का समाज-दर्शन

कबीर कालीन भारत का समाज-दर्शन

मनुष्य के जीवन में परिस्थितियों का विशेष महत्व होता है। परिस्थितियाँ अच्छी हों या बुरी, यह कवि या लेखक की कलम से एक आवाज बनकर निकलती हैं, जो उसके विचारों के माध्यम से साहित्य की संज्ञा ग्रहण करती हैं। इसलिए किसी भी काल की साहित्यिक गतिविधियों और कवि या लेखक के विचारों को यथार्थ रूप से समझने के लिए तत्कालीन बाह्य परिस्थितियों के आलोक में देखना अनिवार्य-सा हो जाता है। अत: कबीर-कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों को समझ लेना आवश्यक है।

१. कबीर-कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ ---

सम्पत्ति और सत्ता पर अधिकार कर लेने की भावना के कारण ही राजनीतिक संघर्षों का जन्म हुआ। इस संघर्ष का विकास सृष्टि विकास के साथ हुआ। समय-समय पर देशी - विदेशी एवं भारत के प्रान्तीय राजाओं के साथ यह संघर्ष होता रहा। कबीर के समय में अर्थात् मध्ययुग में भारत में मुसलमानों का शासन था। चौदहवीं शताब्दी में सन् १३२० से १३८८ तक तुगलक बादशाहों ने शासन किया। उसके शासन काल में देश के चारों ओर निराशा और अशांति ही थी।

मुहम्मद तुगलक के पश्चात् फिरोजशाह तुगलक २३ मार्च, १३५१ को देहली का सुलतान बना। उसके शासन काल में भी लोगों को कष्ट सहने पड़े। उसने कई हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया और जो लोग उसके कहने पर मुसलमान नहीं बने या जिन्होंने अपने बच्चों को मुसलमान नहीं बनाया था उन पर जजीया नामक जुल्मी टैक्स लगा दिया। इससे कई हिन्दू मुसलमान बन गये और वे कर से बच गए। कहते हैं कि उसने एक ब्राह्मण को केवल यह कहने पर कि उसका धर्म भी इस्लाम के

समान श्रेष्ठ है, जिन्दा जलवा दिया था। उसने अपनी धर्मान्धता के कारण न मालूम कितने निर्दोष हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया।' [१]

इसके अतिरिक्त उसे गुलाम बनाने का बहुत शौक था। उसने १,८०,००० लोगों को गुलाम बना कर रखा था।

फिरोजशाह तुगलक की मृत्यु के बाद सन् १३९४ तक कई सुलतान बने और चले गये।

थोड़े दिनों बाद दिल्ली का शासन-सूत्र लोदी वंश के हाथ में चला गया। बहलोल लोदी ने एक बार पुन: देश को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी ने अपनी अदूरदर्शिता और धर्मान्धता से बहलोल के प्रयत्न पर पानी फेर दिया।

सिकन्दर ने अपने होते हुए किसी दूसरे राजा को सिर नहीं उठाने दिया। उसने हिन्दुओं के मथुरा जैसे पवित्र तीर्थ स्थान को तुड़वा कर उसकी जगह मुसलमानों के लिए मसजिद बनवा दी।

'वह इतना हठधर्मी था कि उसने इस्लाम धर्म के प्रचार में १५०० हिन्दुओं तक की हत्या करवाई थी।' [२]

सिकन्दर लोदी की मृत्यु के पश्चात् उसके बेटे इब्राहिम लोदी ने भारत का शासन संभाला। वह भी अपने पिता की तरह क्रूर और निर्दयी निकला।

बाबर ने इब्राहिम लोदी को पानीपत में लड़ाई के मैदान में ही मार दिया। उसने मुगल साम्राज्य की नींव डाली।

अपनी दुर्दशा के भय से कई साधु-सन्त, तत्वज्ञानी बनारस को छोड़कर चले गए थे, किन्तु रामानन्द, कबीर जैसे दार्शनिकों ने अपने ज्ञान की ज्योति को बुझने नहीं दिया। ऐसी परिस्थितियों में रहकर भी उन्होंने अपने सामाजिक सुधार के कार्य को जारी रखा।

इस प्रकार १३वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक का काल राजनीतिक संघर्षों का काल था। विविध राजनीतिक संघर्ष एवं उथल-पुथल के परिणाम जनता को भोगने पड़े।

२. सामाजिक परिस्थितियाँ --

"समाज" शब्द का अर्थ किसी प्रदेश या भूखण्ड में रहने वाले उस जन समूह से है, जिसमें सांस्कृतिक एकता होती है। किन्तु मध्यकालीन समाज विभिन्न धर्म, विभिन्न जातियों, विभिन्न सम्प्रदायों और अलग-अलग राज्यों के रूप में इस प्रकार बिखर गया था कि तत्कालीन संस्कृति के अनेक रूप बन गए थे। इस विभिन्नता का आंशिक रूप वैदिक काल से ही देखने को मिलता है। कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात वैदिक काल से ही आरम्भ हो गया था।"[3]

इस समय वर्ण का चुनाव ऐच्छिक था। कोई भी व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से किसी वर्ण या जाति का बन सकता था। कालान्तर में एक वर्ण से दूसरे वर्णों में जाना बिल्कुल असम्भव हो गया। उस समय वर्ण व्यवस्था का अलगाव श्रम विभाजन के रूप में किया गया था, जो सामाजिक उन्नति में सहायक था। परन्तु मध्यकाल तक आते-आते वही वर्ण व्यवस्था समाज के लिये घातक एवं भारतीय जनता की दुर्दशा का कारण बन गयी।

विभिन्न जाति संघर्ष --

वर्णाश्रम व्यवस्था हिन्दू धर्म का दृढ़ स्तम्भ है। यवनों के प्रारम्भिक हमलों के साथ-साथ यह स्तम्भ भी दृढ़तर होता गया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेद-भावना और भी अधिक बढ़ गई।

वैदिककाल में ब्राह्मण विद्या का, वैश्य कृषि तथा व्यवसाय का और शूद्र सब की सेवा करने के अधिकारी थे। उसका आंशिक रूप मध्यकालीन भारत में भी जाति के रूप में विद्यमान था। विभिन्न जातियाँ बनती गईं, जिनमें छूत-अछूत तथा ऊँच-नीच का भाव और बढ़ता गया। इससे एक वर्ण का दूसरे वर्ण से ईर्ष्या और संघर्ष चलता रहा और बढ़ता रहा।

अलग-अलग जातियों के सीमित कर्म और सीमित अधिकार होने के कारण उनका जीवन एकांगी हो गया था। आचरण में थोथापन एवं असन्तोष का वे अनुभव कर रहे थे। ब्राह्मण केवल पठन-पाठन के अधिकारी होने के कारण धन हीन थे। क्षत्रिय अपने राज्य की रक्षा के लिए युध्द क्षेत्र में कटते-मरते थे। परन्तु अन्य लोग सुरक्षित थे। वैश्य लोग खेती का काम करते थे। उनकी आय का अधिकांश भाग राजस्व में चला जाता था। शूद्र सब की सेवा करने पर भी भूखे और वस्त्रहीन थे। इन चारों प्रमुख जातियों के काम एवं अधिकार एक दूसरे से अलग होने के कारण उनमें पारस्परिक क्षोभ था। इनमें से कोई उच्च वर्ग का होने के लिए तरस रहा था, तो कोई राज्य पाने के लिए। ये सामाजिक मान्यतायें सब के लिए गले की फाँसी बन गयी थी। कबीर ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है --

' लोक वेद कुल की मरजादा, इहै गले में पासी।
आधा चलि करि पीछा फिरिहै ह्वै है जग में हाँसी।। '[4]

निचले स्तर के लोगों के लिए यह व्यवस्था और भी अधिक दुखदायी और घातक थी। इसी कारण जाति व्यवस्था का सबल विरोध निचली जाति के साधु - सन्तों द्वारा अधिक हुआ। शूद्र युगों - युगों से सेवक थे, सामाजिक गुलाम थे। उच्च वर्ग के लोग अपनी स्वार्थ - सिध्दि के लिए परम्परागत व्यवस्था बनाए रखना चाहते थे। पण्डित , गुणी, सूर तथा दान देने वाले पूँजीपति अपने को सबसे बड़ा कहते थे। इस संदर्भ में कबीर कहते हैं :--

' पंडित गुँनी सूर कवि दाता, ऐ जु कहैं बड़ हँमहीं। '[5]

बड़ी जातियाँ छोटी जातियों का शोषण करती थीं। समाज में निम्न वर्ग के लोग अपमान की दृष्टि से देखे जाते थे। समाज में ब्राह्मण-शूद्र का भेद-भाव बहुत था। ब्राह्मण लोग शूद्रों की छाया से भी बचते थे कि कहीं उनकी छाया स्पर्श से वे अपवित्र न हो जायें। ऐसे अवसरों पर कबीर को भी लोगों से जूझना पड़ा था। निम्न जाति वाले अब दुहरी गुलामी में थे। उन्हें मुसलमानों का भी

गुलाम बनना पड़ा । इन सभी दुर्व्यवस्थाओं और दुर्व्यवहारों से वे मुक्त होना चाहते थे ।

हिन्दुओं का पराधीन होना —

अपनी कमजोरियों के कारण हिन्दू शासक पराजित हुये और उन्हें दूसरों के अधीन होना पड़ा । इस पराधीनता में प्रजा को भी अनेक कष्ट झेलने पड़े । हिन्दू जनता के रीति-रिवाजों पर काफी प्रहार हुये । जो - जो सुविधायें उन्हें हिन्दू शासकों के काल में प्राप्त थीं, वे सुविधायें मुसलमानी शासन से प्राप्त न हो सकीं । उनके अधिकार सीमित हो गए । देश में अधिक संख्या हिन्दुओं की थी । किन्तु वे अब आपसी फूट के कारण कमजोर हो चुके थे, जिसके कारण उन्हें पराजित होना पड़ा । अतएव पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए हिन्दुओं के क्रान्तिकारी विचार विवशता में दबे हुए थे । छिट-पुट विद्रोह हुआ करते थे । वे हिन्दुओं के क्रान्तिकारी विचार थे, जो कि मुसलमानी शासन व्यवस्था के विरोध में उमड़ आया करते थे ।

कबीर के समय में हिन्दू समाज अपनी घोर हीनावस्था में था । उसमें न तो किसी प्रकार का उत्साह अब शेष रह गया था और न कोई स्फूर्ति ही । उसमें शिक्षा और सभ्यता दोनों का अभाव था । यवनों के भावों और संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा था । हिन्दू संस्कृति और भाषा दोनों ही पूर्णतया उपेक्षित हो चली थी । साधारण जनता में शिक्षा का अभाव था । समुचित शिक्षा के अभाव में अनेक प्रकार के अंध विश्वास और आडम्बर समाज में फैलते जा रहे थे । धर्म के ठेकेदारों की तूती बोल रही थी । विकृत रूप के प्रति कबीर की आत्मा विद्रोह कर उठी । उनकी वाणी में इस विद्रोह भावना की अच्छी अभिव्यक्ति मिलती है ।

हिन्दू-मुसलमान का जातिगत संघर्ष —

कबीर कालीन समाज में हिन्दू-मुसलमान का जाति गत भेद-भाव बहुत था। दोनों की अपनी अलग - अलग व्यवस्थायें थीं, अपने धार्मिक संस्कार थे। हिन्दू समाज अपनी परम्परागत मान्यताओं में बह रहा था, तो मुसलमान समाज भी लकीर का फकीर बना हुआ था। कोई वर्ग सही रास्ते पर नहीं था। सब पथ भ्रष्ट थे। मुसलमानी शासक जातिगत पक्षपात करते थे। वे अपने धर्म-प्रचार हेतु - यह करते थे। अच्छे पदों पर मुसलमानों की नियुक्ति होती थी और साधारण पदों पर हिन्दुओं की। इससे मुसलमान धनी बनते गए तो हिन्दू गरीब। परिणामत: दोनों में संघर्ष के भाव और बढ़े।

कबीर - कालीन समाज के व्यवसाय और व्यापार पर भी हम दृष्टि-पात करें तो यह दिखायी देगा कि गवर्नर तथा जिले के हाकिम मुसलमान थे। पटवारी, लेखपाल, कोषाध्यक्ष और जिले के अन्य कर्मचारी प्राय: हिन्दू हुआ करते थे। इस्लाम धर्म से सम्बन्धित कानून के अधिकारी " काजी " हुआ करते थे और उनके हाथों न्यायाधिकार होता रहता था।

मुसलमान आक्रमणकारी सैनिक साहसिकता के पक्षपाती थे, इसलिए वे व्यापार को घृणा की दृष्टि से देखते थे। भारतीय व्यापार शैली जिसमें " हुंडी " एवं " उधार खाते " का विशेष महत्व था, मुसलमानों के लिए एक रहस्य बना हुआ था। व्यापारी जातियों के लाभ का अधिकांश भाग सरकारी कोष और हाकिमों की जेब में जाता था, किन्तु हिन्दू बनिया जाति आज की भाँति ही सामाजिक ढाँचे का एक आवश्यक अंग थी। हिन्दुओं से अधिक कर वसूल किये जाने के कारण अधिकांश जनता दीन थी। जनता स्वतंत्र व्यवसाय से ही उदर-पूर्ति करती थी।

"पुजारियों और पण्डों ने धर्म को व्यवसाय बना लिया था, इसीलिए उनका औदार्य और चारित्रिक गुण विलीन हो चुका था। यही कारण था कि संकीर्णता, दंभ एवं पाखण्ड का उस समाज में अत्यधिक विकास हुआ।"[६]

कबीर कालीन समाज में जातिवाद की समस्या जटिल थी। इस जातिवाद की समस्या ने समाज को विभिन्न वर्गों में बाँट दिया था और इसी के कारण समाज में संघर्ष की विभिन्न स्थितियाँ पैदा हो गयी थीं। ब्राह्मण अपने को पवित्र और सर्वश्रेष्ठ समझते थे तो मुसलमान अपने को कट्टरधर्मी और शक्तिशाली समझते थे। हिन्दुओं में अनेक जातियाँ थीं जिनमें एक दूसरे के प्रति ऊँच-नीच, छुआछूत का भेद - भाव था। मुसलमानों में भी अनेक धर्म और संप्रदाय थे जिसके कारण वे एक - दूसरे से अलग हो गए थे। इस प्रकार हिन्दू-मुसलमान दोनों वर्गों पर जाति का पक्का रंग चढ़ गया था, जिसे कोई उपदेश मिटा नहीं सकता था।

हिन्दू और मुसलमानों के बीच एक गहरी खाई बनती जा रही थी, किन्तु सौभाग्यवश कबीर के समय में एक वर्ग ऐसा बन गया था, जो दोनों को एक देखना चाहता था। "वास्तव में कबीर एक ऐसी युग-सन्धि के काल में पैदा हुए थे जिसमें हिन्दू-मुसलमान जातियों के उच्चवर्गों में एक दूसरे के प्रति चाहे कितनी ही असहिष्णुता क्यों न रही हो, एक दूसरे के निकट आने की ओर परस्पर मिलकर रहने की भावना बलवती होती जा रही थी और युग की आवश्यकता यह थी कि कोई सर्वसाधारण के अनियन्त्रित विक्षोभ और विद्रोह को एक सरल सीधा और उपयुक्त मार्ग दिखा सके।"[७]

सामाजिक दुर्बलतायें —

समाज का सारा वातावरण दुर्गुणों से कलंकित हुआ था। नैतिकता का पतन हो गया था। राजनीतिक व्यवस्था न होने के कारण लोगों का आर्थिक स्तर बहुत असमान हो चुका था। एक-दूसरे को धोखा देकर वे अपना स्वार्थ सिध्द कर रहे थे। समाज में जिस प्रकार ठग, लुटेरे दूसरों की कमाई पर जीवित रहते थे, उसी तरह काजी, मुल्ला और पाँड़े भी लोगों को भ्रम में डालकर अपना स्वार्थ सिध्द कर

रहे थे।

कनक, कामिनी समाज को पग-पग पर उलझाते थे। भक्ति में भी शृंगारिक भाव बढ़ गया था। मुसलमानों की देखा-देखी हिन्दू समाज का भी वातावरण विलासी हो गया था। सुन्दरियों का बलात् अपहरण और राज दरबार में बहुनारी-संग्रह विलासिता के प्रतीक थे। फिरोज तुगलक के मंत्री खानेजहाँ ने अपने अन्त:पुर में दो हजार स्त्रियाँ रखी थीं। काम-वासना में अनुरक्त होकर समाज के नर-नारी नारकीय जीवन भोग रहे थे —

"नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम।
कहै कबीर ते राम के, जे सुमिरै निहकाम ।।"[८]

एक विवाह की जगह बहु विवाह होने लगे। इसके लिए न कोई नियम था और न कोई सामाजिक बन्धन। समाज में स्त्रियों का रूपगत महत्व ज्यादा था। इसीलिए वे केवल सुख-भोग की ही वस्तु बन गयीं और समाज में उनका स्थान प्रतिष्ठापूर्ण नहीं था। मुसलमानों के अत्याचार के कारण हिन्दुओं में परदा प्रथा का प्रचार हुआ। इस काल में परदा प्रथा तथा सती प्रथा का प्रचलन था। पुरुषों की भाँति स्त्रियों को स्वतन्त्रता नहीं थी। वे दूसरों के अधीन थीं। उनका मानसिक विकास अवरुध्द था। कबीर ने रूपवती स्त्रियों को तत्कालीन समाज के पतन का कारण माना है। वास्तव में तत्कालीन समाज में प्रचलित विलासिता ही सामूहिक प्रगति में बाधक थी।

"रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप ।
राम नाम बिन बूड़ि है, कनक कामणी कूप ।।"[९]

कबीर कालीन समाज में वेश्यागमन, मद्यपान, चोरी, बेईमानी, घुसखोरी आदि कुकृत्यों से समाज बहुत भ्रष्ट हुआ था। लालची, लोभी, मसखरों का समाज में आदर होता था और सज्जन लोग निरादर पाते थे।

"लालच लोभी मसकरा, तिनहूं आदर होइ ।।"[१०]

मूर्खों तथा मतहीनों की संख्या समाज में बहुत थी। जागरूक व्यक्ति समाज में बिरले ही थे। ज्ञानियों में भी शास्त्रीय एवं परम्परावादी विचारधारा को मानने वाले तथा भौतिकवाद या प्रत्यक्ष जीवन को मानने वाले कुछ दूसरे थे। पंडित, मुल्ला, पाँड़े, परम्परावादी थे, तो तत्कालीन सन्त प्रत्यक्ष जीवन को अधिक महत्व देने-वाले थे। वे हिन्दू-मुसलमान दोनों वर्गों में थे। दोनो वर्गों में वैचारिक संघर्ष था।

सन्तों का क्रान्तिकारी वर्ग ——

इसी समय कुछ ऐसे समाज सुधारक सामने आये, जिन्होंने दोनों समाज को सुधार कर एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। इन सन्तों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। दोनों ही सारग्राही महात्मा थे तथा जाति और धर्म के संकुचित घेरे से ऊपर उठे हुये थे। ऐसे सन्तों में रामानन्द, कबीर तथा जायसी आदि प्रमुख थे। ये दोनों वर्गों से अपने शिष्य बनाते थे और सब प्रकार से ऐक्य भावना को प्रोत्साहन देते थे। उपर्युक्त सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप इन संतों में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं ——

(१) एक सामान्य - धर्म पध्दति के प्रवर्तन की प्रवृत्ति ।
(२) मिथ्याडम्बर का विरोध - वर्ण व्यवस्था आदि की उपेक्षा।
(३) विलासिता के प्रति घृणा।।"[११]

सन्तों ने सभी संकुचित सीमाओं का निषेध कर मानव को मूल रूप में स्वीकार किया। मनुष्यों को एक जाति और सारे मानव मात्र का एक मूल धर्म उन्होंने माना। उन्होंने जीवन में सत्य को उतारा। इनका गुरु - सद्गुरु सत्य था। इनका ईश्वर सत् पुरुष सत्य था। सत्य उनके जीवन का सार था। तत्कालीन जनता ने सन्तों के इस अनुभूत सत्य को स्वीकार किया। उस समय सारी व्यवस्थायें न्याय रहित थीं। इसी कारण सन्तों की आवाज तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक दुर्व्यवस्था के विरोध में मुखरित हुई। उस समय की सन्तों द्वारा की गई क्रान्ति काव्य के माध्यम से की जाने वाली सबल क्रान्ति थी। साथ ही सामाजिक संघर्ष की एक सशक्त कड़ी थी।

धार्मिक परिस्थितियाँ ---

मध्यकालीन जनता ऐसे धार्मिक वातावरण में जी रही थी, जो कि उसे परम्परा से प्राप्त हुआ था। यह परम्परा बहुत पुरानी थी। वैदिक काल के मध्यकाल तक जितने भी धर्म भारतवर्ष में हुए थे, प्राय: सभी धर्मों का अस्तित्व यहाँ विद्यमान था और सभी धर्मों को मानने वाले लोग भी थे। देश का हर एक व्यक्ति किसी न किसी धर्म से जुड़ा हुआ था। इन धर्मों में शैव, शाक्त, वैष्णव, बौध्द तथा जैन आदि समाज में प्रचलित धर्म थे। इन धर्मों का संघर्ष तो पहले से ही चला आ रहा था अब एक ओर नया धर्म हिन्दू समाज का विरोधी बनकर भारत में चलाया गया, जिसकी मान्यतायें सभी भारतीय धर्मों के विपरीत थी। वह इस्लाम धर्म था। इस्लाम धर्म का विरोध सभी हिन्दुओं ने किया, परन्तु इस्लाम धर्म राजनीतिक शक्ति का सहारा पाने से स्वस्थ बना रहा। साथ-साथ सभी भारतीय धर्मों का अस्तित्व भी अलग रूप से बना रहा।

प्राचीन काल में ऋषि मनीषियों ने धर्म के नाम पर जितने मत एवं विचार प्रकट किये थे वे सब सामाजिक सर्वोदय के लिए थे। धर्म एवं वाणी की सभी व्यवस्थायें मानव विकास के लिए थीं। हरेक मनुष्य अपनी अपनी योग्यता के अनुसार अपने अपने क्षेत्र में कुशलता प्राप्त करता था। परन्तु बाद के कालों में धर्म एवं वर्ण का स्वरुप बहुत विकृत हो गया। उसमें नाना प्रकार के मिथ्याचार जुड़ते गये। मध्यकाल में धर्मों एवं जातियों में विविध असमानता थी। सभी धर्मों में पाखण्ड भ्रष्टाचार एवं विविध ढकोसले प्रचलित थे। वैदिक काल में जो देवी-देवताओं की विविध उपासना समाज में प्रचलित थी वह मध्यकाल में भी विद्यमान थी। पुराण, उपनिषद तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों की कथायें समाज में प्रचलित थीं। पण्डित और पाँड़े उसके प्रचारक थे। ईश्वर के अनेक अवतारों में सब की गहरी आस्था थी। शैव, वैष्णव, बौध्द तथा जैन आदि धर्मों के साथ जनता अब भी अपना गहरा सम्बन्ध बनाये हुए थी।

शैव धर्म --

शैव धर्म का आविर्भाव वैदिक काल से ही माना गया है। शिव की उपासना आदिकाल से पशुपति तथा महादेव के रूप में होती चली आ रही है। मध्यकाल में शैव धर्मानुयायी विद्यमान थे जिनकी संख्या उत्तरभारत में अधिक थी। इस काल में अनेक शिव मन्दिर बनाये गये थे और उनमें शिवमूर्ति रखी गई थी। सोमनाथ के मन्दिर में शंकर की मूर्ति कलापूर्ण ढंग से रखी गयी थी। मुहम्मद गोरी ने जब इस मन्दिर पर आक्रमण किया, तो देश के सारे शैव मतावलम्बी उसकी रक्षा के लिए एकत्रित हुये थे, परन्तु इस धर्म में भी अनेक कर्मकाण्ड जुड़ गये थे। शैव धर्मानुयायी अपने को पवित्र और सर्वश्रेष्ठ समझते थे जिससे अन्य धर्मों के साथ इसका संघर्ष चलता रहा था।

वैष्णव धर्म --

भगवान विष्णु के नाम पर चलने वाला वैष्णव धर्म मध्यकाल में भी विद्यमान था। वैदिककाल से मध्यकाल तक इस धर्म की अटूट परम्परा बनी रही। विष्णु भक्तों ने उपासना में कर्मकाण्ड और पाखण्ड पर जरा भी संदेह नहीं प्रकट किया। उन्होंने श्रद्धावश उपासना में सब कुछ अपना लिया। मूर्ति-पूजा का इस धर्म में प्रचलन रहा। शैव और वैष्णव धर्म में कुछ साम्य होने पर भी दोनों धर्मों की अलग-अलग सीमायें बनी रहीं। वैष्णव धर्मानुयायी विविध आडम्बर के साथ-साथ इस धर्म का प्रचार कर रहे थे। ब्राह्मण लोग तंत्र-मंत्र का जाल फैलाकर अपनी जीविका चला रहे थे। गुरु और शिष्य दोनों अन्धे थे जो लालच का दाँव खेलकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे।

"जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधा अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पड़ंत ।।"[12]

"नाँ गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव।
दून्यूँ बूड़े धार में चढ़ि पाथर की नाव ।।"[13]

बाह्य आडम्बरों में सब विश्वास करते थे। आन्तरिक पवित्रता किसी में भी नहीं रह गयी थी। पण्डित वेद, पुराण के थोथे ज्ञान पर अभिमानी हो गये थे। मरने के बाद आत्मा की शान्ति के पिण्ड दान दिया जाता था। कौवे को खिलाकर लोग अपनी पितृ-श्रध्दा व्यक्त करते थे। आराधना में प्रचलित सारा ढकोसला व्यक्तिगत स्वार्थ से जुड़ा था।

मध्यकालीन सन्तों ने इस धर्म की बुराइयों का खुलकर विरोध किया और इस विरोध पर उन्हें अनेक तरह से संघर्ष करना पड़ा। मुसलमान धर्म का इस धर्म से सबल संघर्ष हुआ। मुसलमान शासकों ने हमेशा इस धर्म को नष्ट करने की कोशिश की। परन्तु हिन्दू जनता अपने धर्म की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रही। वैष्णव धर्म का व्यापक रूप मध्यकाल में अस्तित्व में था जो इस्लाम धर्म से हमेशा संघर्ष-रत रहा।

शाक्त मत --

शाक्त मतावलम्बी आद्या देवी की शक्ति में पूर्ण विश्वास रखते थे। इस मत में तंत्र-मंत्र तथा योग साधना को अधिक महत्व दिया गया था। शाक्तों ने समाज में जोग जैसी कुरीतियों का प्रचार कर लोगों को भ्रम में डाल रखा था। ये लोग आद्या देवी को खुश करने के लिए अनेक प्रकार के हिंसात्मक कार्य करते थे। सन्तों ने इस धर्म की बहुत निन्दा की है। बंगाल में इस धर्म का अधिक प्रचलन था। वैष्णव, शैव आदि धर्मों से इसका विरोध था जिसके कारण संघर्ष की स्थिति सभी धर्मों के साथ बनी हुई थी।

बौध्द धर्म --

बौध्द धर्म की उत्पत्ति उस समय हुई जब समाज में अनेक प्रकार की हिंसायें और कर्मकाण्ड प्रचलित थे और हर एक व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार कर्म करने का अधिकार नहीं था इसीलिए बौध्द धर्म अपनी समकालीन परिस्थितियों में वैदिक धर्म का विरोधक था। परन्तु बादमें इस धर्म को अन्य धर्मों से भी संघर्ष करना पड़ा

BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

जैन धर्म इस धर्म का निकटतम प्रतिद्वन्द्वी था। दोनों धर्म के अनुयायियों में पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष के कारण हमेशा संघर्ष होता था।

बौध्द धर्म की दो शाखाएँ बन गई थीं --- हीनयान और महायान। हीनयान सम्प्रदाय वाले सिध्दान्तवादी थे और बुध्द द्वारा बताये गये उपदेशों में पूर्ण विश्वास रखते थे। महायानियों का विचार उनसे कुछ अलग था। वे लोग धार्मिक नियम की कठोरता पर ज्यादा जोर नहीं देते थे। भक्ति तथा तंत्र-मंत्र में इनका पूरा विश्वास था। ये लोग हीनयानियों को तुच्छ समझते थे, जिससे बौध्द धर्म की दोनों शाखाओं में पारस्परिक संघर्ष बना हुआ था।

सिध्दों की ही परम्परा में वज्रयान और सहजयान सम्प्रदाय का विकास हुआ। सहजयान सम्प्रदाय वज्रयान का परिवर्तित रूप था। जो मध्यकालीन समाज में विद्यमान था। इस सम्प्रदाय में सहज साधना और गुरू को अधिक महत्व दिया गया है जिसका वर्णन मध्यकालीन सन्तों ने किया है।

सिध्द-योगियों की परम्परा में नाथ पंथ का विकास हुआ, जिसके मूलप्रवर्तक गुरु गोरखनाथ माने जाते हैं। मध्यकालीन सन्त-समाज गुरू गोरखनाथ के नाथ-पंथ से प्रभावित था। और पिछड़ी जातियों के लोग इस पंथ के अनुयायी बन गए थे। बौध्द धर्म सन् ५२८ ई.पूर्व से लेकर १५वीं शताब्दी तक अपने विविध रूपों में परिवर्तित होकर समाज में प्रचलित था। महायान, हीनयान,वज्रयान,सहजयान तथा नाथ पंथ आदि सम्प्रदाय एवं मतों का विकास बौध्द धर्म से हुआ था। सनातन धर्मियों तथा परम्परागत मान्यताओं में विश्वास रखने वालों से बौध्द धर्म का वैचारिक अलगाव बना हुआ था जो संघर्ष का बहुत बड़ा कारण था।

<u>जैन धर्म</u> ---

जैन धर्म का आविर्भाव लगभग ५०० ई. पूर्व में हुआ। इस धर्म के प्रणेता स्वामी महावीर थे, जिन्होंने हिंसात्मक कार्यों के विरोध में अपने मत का प्रचार किया। इस धर्म के अनुयायी भी पक्के अहिंसावादी थे। इन लोगों ने सत्य, अहिंसा,

अस्तेय, अपरिग्रह और शान्ति को मूल सिध्दांत रूप में अपनाया। आचरण और आवास की पवित्रता जैन धर्म का मुख्य रूप था। इस धर्म की दो शाखायें (श्वेताम्बर और दिगम्बर) हो गयीं और दोनों के विचार तथा रहन-सहन में काफी अन्तर आ गया। मध्यकाल में दोनों शाखाओं के दो अलग-अलग रूप थे। श्वेत वस्त्रधारी श्वेताम्बर और नग्न वेश में रहने वाले दिगम्बर कहे जाते थे। वे पूरे भारत में फैले हुए थे, परन्तु राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र में इनकी संख्या अधिक थी। जैन सन्तों ने मध्यकाल में अनेक भाषा तथा जीवनोपयोगी ग्रन्थ लिखे। हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्म इस धर्म के विरोधी थे। यह धर्म भी अपनी संघर्षमयी परिस्थितियों में जी रहा था।

सूफी धर्म ---

यह अत्यन्त प्राचीन धर्म माना गया है और सूफियों का कहना है कि इसके मूल प्रवर्तक आदम (आदि पुरूष) थे। मध्यकाल में इसका प्रभाव दिखायी देता है। सूफी विचारधारा और मध्यकालीन भारतीय विचारधारा में बहुत कुछ साम्य है। इस धर्म की सरसता प्रेम के क्षेत्र में भी है, जो भारतीय विचारधारा के निकट पड़ती है।

इस्लाम धर्म के कारण सूफी धर्म अधिक प्रसिध्द न हो सका, क्योंकि इस धर्म में उतनी कट्टरता नहीं थी, जितनी कि इस्लाम धर्म में। इसको शासक वर्ग से कोई सहायता भी नहीं मिली। यह भारत के बाहर का धर्म था अत: भारतीय जनता इससे प्रभावित नहीं हुई। हिन्दुओं में इस धर्म के प्रति घृणा और ईर्ष्या के भाव थे जिसके कारण दोनों में संघर्ष होना स्वाभाविक था।

इस्लाम धर्म ---

१४वीं १५ वीं शताब्दी में इस्लाम का प्रचार भारत में हो चुका था। शासन सत्ता मुसलमान शासकों के हाथ में होने के कारण इस धर्म का कलेवर शक्तिशाली हो चुका था और अन्य भारतीय धर्मों की शक्ति निर्बल पड़ गयी थी। इस काल में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच सबसे बड़ा संघर्ष का कारण ' धर्म '

था, जिससे अर्थ, राजनीति और पूरा समाज लिपटा हुआ था। पण्डित, पांडे, मुल्ला, काजी, छूत, अछूत आदि जातियाँ धर्म की विस्फोटक चिनगारियाँ थीं, जिसमें पूरा समाज सुलग रहा था। जिसके कारण समाज में एक ऐसा असंतुष्ट वर्ग विरोधी बन गया था, जो सारी दुर्व्यवस्थाओं से ऊब गया था।

इस्लाम का प्रचार हिन्दू धर्म के विरोध में होने के कारण सारी भारतीय जनता इसके विरुध्द हो गयी और सबल क्रान्ति करने का अवसर ढूँढने लगी। हिन्दुओं के मन्दिर को तोड़ना तथा उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार करना आदि अमानवीय व्यवहारों ने संघर्ष की भयानक स्थिति पैदा कर दी थी। जिसके कारण सारे भारतीय धर्म इस्लाम धर्म के विरोधी बने रहे।

इस प्रकार मध्यकाल में हिन्दू-मुसलमान दो धर्मों का संघर्ष बहुत तेजी से चल रहा था। हिन्दू धर्म बहुत पुराना धर्म था, जो अपने देश के रीति-रिवाज तथा संस्कारों में घुल मिल गया था, जिसके कारण जनता अपार मोह से उसके साथ चिपकी हुई थी। दूसरी तरफ इस्लाम धर्म तलवार के बल पर चलाया जाने वाला धर्म था। समाज में अनेक पंथ व धर्म प्रचलित थे, जिसमें मिथ्याचार व पाखण्ड समाया हुआ था। शैव-वैष्णव, श्वेताम्बर-दिगम्बर, हीनयान, महायान, सिध्द, शाक्त, वैरागी तथा बनखण्डी आदि समाज में वर्तमान थे। हिन्दू-मुसलमानों दोनों धर्मों में कुछ-न-कुछ कमियाँ थीं जिसके कारण दोनों धर्म सर्वप्रिय न हो सके। इस्लाम धर्म को राज्य की तरफ से सहायता मिलने के कारण अधिक शक्ति मिली और उसका काफी प्रचार हुआ। दूसरी तरफ हिन्दू धर्म अनेक प्रतिबन्धों में संकुचित हो गया। इन विविध सामाजिक बुराइयों एवं धार्मिक कर्मकाण्डों के विरुध्द मध्यकालीन सन्तों ने आवाज उठायी, जिसके परिणामस्वरुप धार्मिक क्रान्ति को और बल मिला।

<u>धार्मिक संघर्ष के परिणाम</u> —

१. हिन्दू-मुसलमान धर्मों का अलगाव सदैव के लिए हो गया।

२. धर्म के नाम पर साधारण जनता को अधिक कष्ट झेलने पड़े।

३. धार्मिक प्रभाव के कारण हिन्दू-समाज राजनीतिक छल प्रपंचों से दूर रहा।

४. हिन्दुओं की धार्मिक मनोवृत्ति के कारण मुसलमान शासकों को भारत से अधिक धन लूटने का अवसर मिला।

५. धार्मिक बुराइयों एवं सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं की प्रतिक्रिया में सन्तों ने धार्मिक क्रांति की।

४. आर्थिक परिस्थितियाँ —

भारत की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी थी कि इसे सोने की चिड़िया कहा जाता था। इसके धन ने मुहम्मद गजनी, मुहम्मद गोरी, चंगेज खाँ आदि अनेकों को लूटने के लिए आमंत्रित किया। जब मुसलमान यहाँ स्थायी रूप से बस गए तो आर्थिक प्रगति हुई। खेती और उद्योग यहाँ के मुख्य स्त्रोत थे। अनावृष्टि आदि कारणों से खेती को यदाकदा नुकसान होने से अकाल भी पड़ता था। कृषि उत्पादित अनेक वस्तुओं का निर्यात किया जाता था। सोना - चाँदी, कपड़ा आदि अनेकों उद्योग थे।

देश में वस्तुओं की कमी नहीं थी, लेकिन उसका वितरण उचित ढंग से नहीं होता था। धन अल्पसंख्यकों के पास केन्द्रित था। सुलतान उनके उच्च - पदाधिकारी, हिन्दू राजा उनके मुख्य पदाधिकारी, बड़े व्यवसायी और बैंकर्स के पास पर्याप्त सम्पत्ति थी।

मध्यवर्गीय नौकरी पेशेवाले, किरानी, व्यवसायी भी अच्छे थे, परन्तु सामान्य जनता जिनकी संख्या सबसे अधिक थी, गरीब थी और अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए उनके पास पर्याप्त साधन नहीं थे। इस सामान्य जनता का सम्बन्ध हिन्दू से है। मुसलमान शासक का उद्देश्य उस द्वितीय श्रेणी के नागरिक को दुर्बल बनाए रखने का था, जिससे कि यह वर्ग सिर न उठा सके। इन पर अनेक प्रकार के कर लगाए जाते थे। खेती का ५० प्रतिशत भूमि कर के रूप में ले लिया जाता था। इसके अलावा गृहकर, चारण-भूमि - कर के रूप में ले लिया जाता था। इसके अलावा गृहकर, चारण-भूमि - कर, जजिया आदि अनेकों प्रकार के कर उनसे लिए जाते थे। हिन्दुओं को इतना कमजोर बना दिया गया था कि उनके

घरों में सोने या चाँदी के टके या पीतल का कोई भी चिह्न दिखाई नहीं देता था ।

मुसलमानों की आर्थिक दशा हिन्दुओं से अच्छी अवश्य थी, परन्तु ज्यों-ज्यों धर्म परिवर्तन, जन्म आदि के कारण इनकी जन-संख्या में वृध्दि होती गई त्यों-त्यों इनकी आर्थिक दशा में अन्तर बढ़ना स्वाभाविक था । मुसलमान भी खेती व्यवसाय आदि करते थे, लेकिन इनके ऊपर कर - भार हिन्दुओं से कम था । इसलिए हिन्दू कृषक और जुलाहे से मुसलमान कृषक और जुलाहे की आर्थिक दशा अधिक अच्छी थी ।

कोई भी व्यक्ति सामाजिक कल्याण के लिए धन नहीं खर्च करता था, जिसके कारण समाज में आर्थिक असमानता थी । कबीर ने कहा था कि यह समाज की कैसी दुर्व्यवस्था है ? एक गरीब होता है और दूसरा उसे दान देता है, एक भूखों मरता है दूसरा सुरापान करता है ।

"एकनि मैं मुक्ताहल मोती, एकनि ब्याधि लगाई ।
एकनि दीना पाट पटंबर, एकनि सेज निवारा ।।"[१४]

लोग दो-दो दीपक घर में जलाते हैं, परन्तु मन्दिर में हमेशा अन्धेरा रहता है ---

"द्वै द्वै दीपक धरि धरि जोय, मंदिर सदा अँधारा ।
घर घेरा सब आप सवारथ, बाहरि किया पसारा ।।"[१५]

कबीर की उलटबासियाँ इन्हीं अर्थों को लेकर अभिव्यक्त हुई हैं । छोटे-छोटे वर्गों में सदा संघर्ष होता था प्रजा से लेकर राजा तक धन संग्रह किया करते थे । एक संग्रह करता था दूसरा उसका अपहरण । इस तरह समाज की आर्थिक स्थिति अव्यवस्थित थी ।

<u>साहित्यिक परिस्थितियाँ</u> ---

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है । मध्यकालीन समाज विविध संघर्षों में टूट गया था । उस समय अनेक धार्मिक, आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांतियाँ हो रही थीं । इन्ही क्रान्तियों के बीच मध्यकालीन साहित्य का भी विकास हुआ । उस समय भारत वर्ष में भाषाओं का प्रचलन था । अरबी, फारसी,

उर्दू, संस्कृत तथा हिन्दी आदि भाषाओं में साहित्य विकसित हो रहा था।

मुहम्मद तुगलक के राजाश्रय में अरबी, फारसी तथा भारतीय भाषाओं के १००० कवि थे। जौनपुर उस समय अरबी, फारसी सीखने का केन्द्र था। संस्कृत का प्राय: पतन हो चुका था यद्यपि राजभाषा भी समाज में जीवित थीं।

उस समय समाज में ईश्वर के प्रति मुख्य रूप से दो प्रकार की धारणाएँ प्रचलित थीं। एक ईश्वर की उपासना सगुण या साकार रूप में करता था और दूसरा निर्गुण या निराकार रूप में। इन सारी मान्यताओं से तत्कालीन साहित्य भी प्रभावित था। सगुण साहित्य का विकास कथानक के माध्यम से हुआ और निर्गुण साहित्य का स्वतन्त्र रूप से। पहले प्रकार का साहित्य परम्परागत काव्य-विधाओं में रचा गया और दूसरे प्रकार का साहित्य सहज रूप से अनुभव के आधार पर लिखा गया। संत काव्य अनुभव पर आधारित था, जिसने परम्परागत साहित्य के विरोध में अपने मतों का प्रचार किया, सीधी, सादी तथा प्रभावपूर्ण भाषा में लिखा गया सन्त काव्य अत्यन्त लोक प्रिय रहा। सन्त काव्य वर्णव्यवस्था तथा धार्मिक कर्मकाण्डों का विरोधी बनकर समाज में प्रतिष्ठित हुआ। मध्यकालीन सन्तों में स्वामी रामानन्द, कबीर, रैदास आदि प्रसिध्द हुए, जिन लोगों ने निर्गुण साहित्य का प्रचार एवं प्रसार किया। ये सन्त पिछड़ी जाति के थे। इसलिए सन्त साहित्य में जाति-पाँति को कोई महत्व नहीं दिया गया। परिणाम स्वरूप भक्तों का एक संगठन बना जिसने निर्गुण साहित्य को आगे बढ़ाया।

सन्त साहित्य निर्गुण विचारधारा को लेकर चला और दूसरे प्रकार का साहित्य ईश्वर के विविध अवतार तथा अन्य लीला-गान को लेकर लिखा गया। दूसरी तरफ इस्लाम साहित्य अद्वैतवादी एवं प्रेम मार्गी था। सभी धर्मों के साहित्य भी भिन्न-भिन्न मतों से प्रभावित थे। वैचारिक अलगाव के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में भी अलगाव था।

साहित्यिक संघर्ष के परिणाम —

(१) धार्मिक मतभेदों के कारण साहित्य के क्षेत्र में भी विविध विचारधारा से प्रभावित काव्य लिखा गया ।

(२) सभी धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में सन्त साहित्य लिखा गया ।

(३) मुख्य रूप से समाज में उर्दू और हिन्दी साहित्य का प्रचार एवं प्रसार हुआ ।

(४) निर्गुण एवं सगुण साहित्य के माध्यम से भक्ति आन्दोलन एवं जनता में पुनर्जागरण शुरू हुआ ।

(५) सन्त काव्य के विकास से हिन्दी साहित्य अधिक सम्पन्न हुआ ।

— निष्कर्ष —

कबीर के समय में राजनीतिक संघर्ष और धार्मिक क्रान्ति के कारण समाज - जीवन तितर-बितर हो गया था । जनता अपनी रोजी रोटी के लिए कोई भी धर्म, कोई भी व्यवसाय अपनाने के लिए तैयार होने लगी थी । आर्थिक समस्या मूल समस्या बन गई थी । धर्म और जाति समाज की दुर्गति के कारण बन गये थे । उनकी प्रतिष्ठा समाप्त हो गई थी । परिस्थितिवश हिन्दू जनता मुसलमान बनती जा रही थी ।

राज्य विस्तार तथा धन प्राप्ति के लिए सर्वत्र संघर्ष चलता रहा । हिन्दू राजे महाराजे, जिन्होंने देश में छोटे-छोटे राज्यों का निर्माण किया था, आपसी फूट के कारण पराजित हुए । प्राय: मुसलमान शासक विजयी रहे । मन्दिरों एवं राजमहलों का संचित धन विदेशी आक्रमणकारियों के हाथ लगा । वस्तुत: राजनीतिक संघर्षों ने हिन्दुओं को सभी तरह से तोड डाला था । अब उनकी केवल प्राचीन गौरव गाथा ही शेष रह गयी थी ।

मध्यकाल में सामाजिक संघर्ष काफी तेजी से हो रहा था । यह एक ऐसा धर्म संकट का काल था कि इसमें एक धर्म का बन जाना आवश्यक बन गया था ।

जातिगत मतभेद बढ़ गया था। मुसलमानों के अत्याचार के कारण समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन हुआ। उचित सामाजिक व्यवस्था न होने के कारण लोगों का चारित्रिक पतन हुआ। सभी दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में क्रान्तिकारी विचारकों का आविर्भाव हुआ।

कबीर-काल में हिन्दू - मुसलमान दो धर्मों का संघर्ष बहुत बढ़ गया था। हिन्दू धर्म अधिक पुराना होने के कारण अपने देश के रितिरिवाज तथा संस्कारों में घुल मिल गया था, जिसके कारण जनता अपार मोह से उसके साथ लगी हुई थी। इस्लाम धर्म तलवार के बल पर चलाया जाने वाला धर्म था। मुसलमानों के लिए धर्म युध्द प्रेरणा एवं प्रोत्साहन था और हिन्दुओं के लिए दुर्गति का कारण था। समाज में अनेक पंथ व धर्म प्रचलित थे, जिसमें मिथ्याचार व पाखण्ड समाया हुआ था। शैव, वैष्णव, श्वेताम्बर-दिगम्बर, हीनयान-महायान, सिध्द शाक्त वैरागी तथा वनखण्डी आदि साधुओं के अनेक सम्प्रदाय समाज में वर्तमान थे। इस काल में तीर्थ - यात्रा तथा धर्म स्थान का अधिक महत्व था। इस्लाम धर्म को राज्य की तरफ से सहायता मिलने के कारण अधिक शक्ति और उसका काफी प्रचार हुआ। हिन्दू धर्म अनेक प्रतिबन्धों में संकुचित हो गया। इन विविध सामाजिक बुराइयों और धार्मिक कर्मकाण्डों के विरुध्द मध्यकालीन सन्तों ने आवाज उठायी, जिसके परिणाम स्वरुप धार्मिक क्रान्ति को बल मिला।

मुसलमानों के आक्रमण और राजनीतिक परिवर्तनों के कारण जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी न रह सकी। राज्य की तरफ से सामाजिक विकास के लिए कोई अर्थ व्यवस्था नहीं थी। जो व्यवस्था थी भी, वह राजा की आय के लिए थी। राजपरिवार में फिजूल खर्च व विलासिता अधिक थी। परिणाम स्वरुप नैतिकता का पतन हुआ। विविध संघर्षों के कारण धनी एवं गरीब वर्ग का अन्तर दिन-ब-दिन बढ़ता ही गया। कोई भी व्यक्ति सामाजिक कल्याण पर धन नहीं खर्च करता था, जिसके कारण समाज में आर्थिक असमानता थी। धन-संग्रह की भावना राजा, प्रजा सब में तीव्र थी। इस कारण तत्कालीन समाज में नैतिकता का पतन एवं अत्याचारों का आधिक्य दिखाई देता है।

कबीर कालीन साहित्यिक संघर्ष में अनेक धार्मिक ,आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रांतियाँ हो रही थीं। इन्हीं क्रान्तियों के बीच मध्यकालीन साहित्य का भी विकास हुआ। उस समय अरबी, फारसी, उर्दू, संस्कृत तथा हिन्दी आदि भाषाओं का प्रचलन हुआ। उस समय समाज में भगवान के प्रति मुख्य रूप से दो प्रकार की धारणाएँ प्रचलित थीं — सगुण और निर्गुण। मध्यकालीन सन्तों में स्वामी रामानन्द, कबीर, रैदास आदि प्रसिध्द हुए जिन्होंने निर्गुण साहित्य को आगे बढाया। इन सन्तों में खासकर कबीर ने सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में उन्होंने आवाज उठायी, तथा एक दूसरे के निकट आने की, मिलते रहने की भावना को, युग की आवश्यकताओं को बल प्रदान किया।

उन्होंने सभी संकुचित सीमाओं को नकार कर मानव को मूलरूप में स्वीकार किया। उन्होंने सभी मनुष्यों को एक जाति और सारे मानव मात्र को एक मूल धर्म मान लिया। उन्होंने विश्व-बंधुत्व, सात्विक प्रेम की ज्योति प्रज्वलित की। कबीर ने मानव को मानवता के सूत्र में बाँधकर उसे सच्चा मानव बनाने का महान प्रयास किया।

संदर्भ सूची

संदर्भ क्र.	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृ.क्र.	प्रकाशक, प्रकाशन एवं संस्करण
१	कबीर की विचारधारा	डा.गोविन्द त्रिगुणायत	७०	साहित्य निकेतन कानपुर-१,तृतीय संस्करण :श्रावणी सं.२०२४
२	— वही —	—,,—	७१	— वही —
३	कबीर का सामाजिक दर्शन	डा.प्रह्लाद मौर्य	५९	पुस्तक संस्थान कानपुर-१२, १९७४ ई.
४	कबीर ग्रंथावली	संपादक डॉ.श्यामसुन्दरदास लेख ` पद `	९८	नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण सं.२०४१ वि.
५	— वही —	—,,—	९९	— वही —
६	युगपुरुष कबीर	डॉ.रामलाल वर्मा डॉ.रामचन्द्र वर्मा	५८	भारतीय ग्रन्थ निकेतन,दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७८.
७	— वही —	—,,—	५८	— वही —

A
10582

संदर्भ क्र.	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृ.क्र.	प्रकाशक, प्रकाशन एवं संस्करण
८	कबीर ग्रंथावली	संपादक डॉ.श्यामसुन्दर दास लेख " साखी "	३१	नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण सं.२०४१ वि.
९	— वही -	—,,—	२६	— वही —
१०	— वही -	,,	२८	— वही —
११	कबीर की विचारधारा	डॉ.गोविन्द त्रिगुणायत	७४	साहित्य निकेतन कानपुर-१,तृतीय संस्करण : श्रावणी सं. २०२४
१२	कबीर ग्रंथावली	संपादक डॉ.श्यामसुन्दरदास लेख" साखी "	२	नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण सं.२०४१ वि.
१३	— वही —	—,,—	२	— वही —
१४	कबीर ग्रंथावली	संपादक डॉ.श्यामसुन्दर दास लेख" पद "	९३	— वही —
१५	— वही —	— ,, —	८८	— वही —